R.N.I.No.-CHHHIN16015/33/1/2014-TC डाक पं

सुदूर आदिवासी क्षेत्र की लोक संस्कृति ए

संपादकीय कार्यालयः–

'बस्तर पाति'

सन्मति इलेक्ट्रीकल्स, सन्मति गली, दुर्गा चौक के पास,
जगदलपुर, जिला–बस्तर, छ.ग. पिन–494001
मो.–09425507942 ईमेल–paati.bastar@gmail.com

जल्दी ही इंटरनेट पर–www.paati.bastar.com

मूल्य पच्चीस रूपये मात्र • अंक–1,अप्रैल–जून 2014

प्रबंध संपादक
सनत कुमार जैन
संपादक मंडल
श्रीमती उषा अग्रवाल 'पारस'
शशांक श्रीधर
विशेष सहयोगी
विजय बोरकर
शब्दांकन
अनूप जंगम
मुख पृष्ठ
बंशीलाल विश्वकर्मा,जगदलपुर, 07587175058
रेखांकन
सुरेश विश्वकर्मा 'चितेरा',जगदलपुर, 9424293971

सहयोग राशि–साधारण अंकः पच्चीस रूपये पंचवर्षीयः पांच सौ रूपये मात्र, संस्थाओं एवं गंथालयों के लिएः एक हजार रूपये मात्र. सारे भुगतान मनीआर्डर/ड्राफ्ट ***सनत कुमार जैन*** के नाम पर संपादकीय कार्यालय के पते पर भेजें या फिर स्टेट बैंक ऑफ इंडिया के खाता क्रमांक **10456297588** में भी बैंक कमीशन जोड़कर सीधे जमा कर सकते हैं.

प्रकाशक, मुद्रक, संपादक सनत कुमार जैन द्वारा सन्मति प्रिन्टर्स जगदलपुर से मुद्रित एवं सन्मति इलेक्ट्रीकल्स, सन्मति गली, दुर्गा चौक के पास, जगदलपुर के लिए प्रकाशित

पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं के विचारों से बस्तर पाति, संपादक मंडल या संपादक का सहमत होना अनिवार्य नहीं है. रचनाकारों द्वारा मौलिकता संबंधी लिखित/मौखिक वचन दिया गया है. संपादन एवं संचालन पूर्णतया अवैतनिक और अव्यवसायिक. समस्त विवाद जगदलपुर न्यायालय के अंतर्गत.

सभी रचनाकारों से विनम्र अनुरोध है कि वे अपनी रचनाएं कृतिदेव 14 नंबर फोण्ट में एवं एक्सेल, वर्ड या पेजमेकर में ईमेल से ही भेजने का कष्ट करें जिससे हमारे और आपके समय एवं पैसों की बचत हो। रचना में अपनी फोटो, पूरा पता, मोबाइल नंबर एवं ईमेल आईडी अवश्य लिखें।

पाठकों से रूबरू/2
पाठकों की चौपाल/4
बहस–लोककथा, कथाओं में जिज्ञासा, महान चरित्र व आत्मिक द्वन्द की स्थिति, कथा तकनीक–एक, कथा तकनीक–दो/5
लघुकथा/श्रीमती कांता देवांगन/15
ग़ज़ल/रऊफ़ परवेज़/16
काव्य/श्रीमती माधुरी राऊलकर/संतोष कुमार 'सम'/17
काव्य/श्रीमती कल्पना नाग/बद्रीश सुखदेवे/18
काव्य/लम्बाड़ी सुनील कुमार/कुमार प्रवीण सूर्यवंशी/19
लघुकथा/डॉ तारिक असलम 'तस्नीम'/20
लघुकथा/श्रीमती इंदु देवांगन/21
काव्य/डॉ सुजय कुमार शरण/नरेन्द्र कुमार यादव/22
काव्य/तमंचा रायपुरी/अमित कुमार सिन्हा/23
ग़ज़ल/नूर जगदलपुरी/ऋषि शर्मा 'ऋषि'/24
यात्रावृतांत/डॉ रूपेन्द्र 'कवि'/25
काव्य/आशीष सिन्हा/रेखराम साहू/27
काव्य/कमलेश्वर साहू/28
हायकू/डॉ सुरेश तिवारी/30
हायकू/श्रीमती उषा अग्रवाल 'पारस'/31
काव्य/शशांक श्रीधर/32
काव्य/श्रीमती सुषमा झा/33
काव्य/श्रीमती गुप्तेश्वरी पाण्डे/श्रीमती मंजू लुकंड़/34
लघुकथा/अखिल रायजादा/35
काव्य/विमल तिवारी/ब्रजेश नंदन सिंह/36
काव्य/ख़दीज़ा खान/37
संस्मरण/पुस्तक अंश/हरिहर वैष्णव/38
साक्षात्कार/लाला जगदलपुरी/पाति फीचर्स/41
काव्य/अरविंद बाहार/42
कहानी/बी.एस.धीर/43
कहानी/वंदना सहाय/47
लोक कलाकार/रचनाकार/डॉ योगेन्द्र मोतीवाला/50
क्षणिका/वसंत कुमार चव्हाण/51
बातचीत/अंजन कुमार श्रीवास्तव/रमेश यादव/52
कहानी/उर्मिला आचार्य/55
काव्य/श्रीमती कमलेश चौरसिया/59
नक्कारखाने की तूती/पाति फीचर्स/60
साहित्यिक उठापटक/62
कविता कैसे बदले रूप/63
फेसबुक वॉल से/63
रचनाकार पाठकों से/64

पाठकों से रूबरू

किसी भी सुन्दर बड़े भवन के नीचे एक मजबूत नींव होती है, जो भले ही नजर नहीं आती है परन्तु समझदार, समझता ही है. इस नींव पर पड़ रहे दबाव और उसे झेलने की क्षमता ही उसकी महत्ता बता देती है. यही वह ताकत होती है जो हर प्रकार के क्षेत्र में सुंदर और विशाल भवन तैयार होने देती है.

लघुपत्रिकायें एक आंदोलन हैं, यह कोई नकार नहीं सकता है. यही हैं जो किसी भी भाषा के जमीनी लोगों को जोड़ते हुए कारवां बनाती हैं. ये जहां से भी निकलती हैं उस क्षेत्र की गंध समेटे हुए रहती हैं. इनमें हर प्रकार के फूलों की गंध होती है, अब जिस गंध को फैलना है तो उसे रोकना आसान नहीं.

क्षेत्र के साहित्यकर्मियों को मंच मिलता है अपनी बात पूरे देश तक पहुंचाने का, तो साथ ही नवीन साहित्यकारों का सृजन भी होता है. लघु पत्रिकाओं की गतिविधियां पत्रिका प्रकाशन के अलावा भी बहुत कुछ होती हैं. इन पत्रिकाओं से जुड़े लोग आम जनता से सीधे सम्पर्क में होते हैं. उनके दोस्त यार, पहचान वाले सामान्य जन होते हैं; कोई ताले की चाबी बनाने वाला तो कोई खाना बनाने वाला, तो कोई पान वाला. इन पत्रिकाओं की आंदोलनकारी टीम इन्हीं पर नजरें गड़ाकर वो अमृत खींच लाती हैं जो आमतौर पर विभिन्न सुन्दर सुवासित द्रव्यों से घिरा हुआ नजर ही नहीं आता है. प्रत्येक मेधा में एक खास दृष्टि होती है. बारीक दृष्टि के मालिक को ढूंढना और उसे लगातार थपकियों से संवारना, गद्दी पर बैठे और फीता काटने वाले लोगों के लिए संभव नहीं है.

पानवाले की बातों में वह रस होता है जो पान से भी ज्यादा स्वादिष्ट होता है. उसकी बातों में न जाने कितनों का सुख दुख समाया होता है. खाली समय में आते जाते लोगों की बारीक से बारीक तब्दीली उसकी नज़रों से होती हुई दिमाग में कैद हो जाती है. अब उस रिकार्ड को बाहर लाना, ये आंदोलनकारियों से ही संभव है.

साहित्य में पठन पाठन दोनों को जोडने का सेतु बनती हैं लघुपत्रिकायें. यह वह साधन हैं जो नये पाठक तैयार करती हैं और नये रचनाकार भी. छपे छपाये लोगों को छापना, जितना जरूरी है, उससे कहीं ज्यादा जरूरी है जमीनी स्तर का यह काम. व्यवस्था और समय के बदलाव को जबानी जमा खर्च से तौलने वालों को लेख, कहानी, कविता आदि के माध्यम से तराशना, प्रोत्साहित करना, आसान काम नहीं है, परन्तु प्रत्येक लघु पत्रिका यही करती हैं. यही तो आंदोलन है, जमीनी लोगों के विचारों में तब्दीली, उनके व्यवहार में तब्दीली. उनके मस्तिष्क के बीच एक बीज डालना और खाद, दवा, पानी से पौधा बनते देखना!

इस वैचारिक मन का ठोस सत्य है कि वह संगीत, कथा या जो भी सहज क्रीडायें हैं उनकी ओर ही भागता है. वह रह रहकर उस ओर जाना चाहता है और अंधी आधुनिकता उसे एक विशेष खांचे में समाने कहती है. उसी उसी खांचे में रहकर सोचने समझने और मानसिक शांति पाने को कहती है, जबकि प्राकृतिक स्वरूप है सहज की ओर आकर्षण.

अतिज्ञानी और धनवानों ने जो साहित्य का खांचा तैयार किया है, गले में ढोल बांधकर जिसका बारम्बार नाद करते हैं, वो इतना कठिन है कि स्कूल की बोझिल किताबों की तरह लगता है. जबकि साहित्य वह होना चाहिए जो आप ही आप बहकर हृदय की बंद खोलियों से निकलकर किसी दूसरे के हृदय में समा जाए. प्राकृतिक नदियों के किनारों के दृश्य देखे जाते हैं न कि मानव निर्मित नहरों के. उन नहरों को देखने वाला इंजीनियर, ठेकेदार और फीता काटने वाला नेता ही होता है. यह सच है कि नहरें खेतों में पानी डालती हैं और जीवन देती हैं.

अतिज्ञानी ऐसे ऐसे शब्द तैयार करते हैं और उनकी लकीर खींचकर, नवीन उर्वर मन को सांप बताकर डरा देते हैं. क्या मालूम उनकी मनसा क्या है, स्वयं को स्थापित करने के लिए उन्हें कुचलना या फिर साहित्य को भी वेद पुराण बना देना. इस दिशा में उदाहरण स्वरूप जरा देखा जाए.

नई कविता को ही लें, जो छंद विहिन इसलिए बनी कि वह आमजन से दूर हो रही थी. पर आज यही नई कविता, छंदयुक्त कविता से भी कठिन है. अतिज्ञानियों ने जो खांचा तैयार किया है उसके अनुरूप हो गई हैं कवितायें. इन खांचागारों ने साहित्य में ही खांचे तैयार नहीं किए हैं जिनमें रचनायें फिट बैठ जायें बल्कि साहित्यिक गतिविधियों को भी खांचें में ढाल दिया है. छोटे छोटे स्थानों में रहने वाला छोटा सा भी साहित्यकर्मी बनारस, दिल्ली की शैली में बात करता है. मंच कैसा हो, कैसे बोला जाए, क्या पढ़ा जाए, कैसे अखबार में नाम आए, कैसे इन छोटे मोटे आयोजनों को सीढ़ी बनाकर लाइम लाइट में आया जाए!

इन सबके बीच किसी को इस बात की जरा भी चिन्ता ही महसूस नहीं होती है कि नये पाठक और नये रचनाकार कैसे आएं या फिर वे कम क्यों होते जा रहे हैं ? हर कोई स्नो–पावडर, तेल–साबुन लेकर खुद को संवारने में लगा है. अब तो यह होता जा रहा है कि अच्छी रचनाओं के लिए चुप्पी थाम ली जाती है. तो ऐसे में नये लोगों को तैयार कौन करे,

कौन स्कूल कालेज के छात्रों में साहित्य का बीजारोपण करे ? कौन उन तक साहित्य की पहुंच बनाए, उनकी रचनाओं को छापकर कौन ये बीड़ा उठाए ? कौन उनसे संवाद स्थापित करे ?

बातों से अलंकार गायब होते जा रहे हैं, मुहावरे मरते जा रहे हैं. बोलचाल में हिन्दी शब्दों की संख्या कम होती जा रही है और सबसे बड़ी बात, इस प्रकार भाषा के तिल तिलकर मरने से भारतीय संस्कार मरते जा रहे हैं. जीवन में सहजता खत्म होती जा रही है. मानव मन की सहज, सरल प्रवृत्ति कैसे बनी रहे ? हमें सहज प्रवृत्तियों को सहारा देकर बचाना जितना जरूरी है उससे कहीं ज्यादा जरूरी है नई पीढ़ी में इसका बीजारोपण! सबसे पहले तो उन तक पहुंच बनाई जाए, उन्हें साहित्य उपलब्ध कराया जाए. साहित्य की पाठशाला लगाई जाए, फिर परिदृश्य में आई रचनाओं पर पीठ थपथपाई जाए. ऐसा सतत् प्रयास निश्चय ही एक सुसंस्कृत, सुविचारित और जवाबदेह समाज का निर्माण करेगा. बाजारू पत्रिकाओं की भीड़ में अपनी उपस्थिति दर्ज कराई जाए. जब उपलब्धता होगी तो उसके चाहने वाले भी आयेंगे.

साहित्यिक भ्रूण हत्या जो आज के समय की प्रबल योग्यता मानी जाती है, जो अपने आप को स्थापित करने का जरिया बनाया जा रहा है. संपादक अपनी सीमित दुनिया का ब्रह्मा बना बैठा है, उसके इस वर्चस्व को चोट पहुंचाना जरूरी है. पत्रिका की गुणवत्ता बनाए रखने की खाल के पीछे क्या चाल है, प्रत्येक रचनाकार जानता है परन्तु मजबूरी है कि अकेला क्या करे ? कैसे इस व्यवस्था से बचे ? शहरों में रहने वाले जुगाडू लोग, जल्दी ही लाइम लाइट में आ जाते हैं. कई पत्रिकाओं में छप छपाकर पाठकों के दिमाग में बैठा दिया जाता है कि यही प्रेमचंद हैं, यही निराला हैं और यही मुक्तिबोध हैं. संपादकों के पत्र आते हैं आपकी रचना पत्रिका के मूड के हिसाब से नहीं है. जब उन्हीं संपादकों की रचनाएं दूसरी पत्रिका में आती है तब पता चलता है कि वो अपना चेहरा चमकाने के लिए बड़ी लकीर खींचने ही नहीं देना चाहता है.

थोड़ा बहुत छपे, वो भी जुगाड़ से, ऐसे साहित्यकार भी अपने क्षेत्र में ऐसी ही भूमिका निभाते हैं. जब भी गोष्ठियों में जायेंगे, अपनी छपी रचना वाली पत्रिका लेकर ही जायेंगे, अपनी विशिष्टता जतायेंगे. स्थानीय साहित्यकारों की टोली (समिति कहना बेमानी होगा.) अपने मतलब से गोष्ठी रखती है, जिसमें एक दूसरे को अपनी उपलब्धि बताई जाती है. इन गोष्ठियों का मकसद, गोष्ठी करना कम, एक दूसरे से मिलने का जरिया ज्यादा होती है. इस गोष्ठी के अगले दिन प्रकाशित होने वाले अखबारों में खबर छपवाते हैं अपने मित्र पत्रकारों को बुलवाकर. इसके माध्यम से अपने बड़े पोस्टर में एक कील और ठोंककर अपने को साहित्यकार बनाये रखते हैं. हम इस साहित्य कर्म की विपरीत विचारधारा में, भारी भरकम जहाज नहीं, बल्कि छोटी कश्ती लेकर उतर रहे हैं. जिसे विपरीत विचारधारा के हिचकोले डुबाने की कोशिश लगातार करेंगे. उसके बाद भी साहित्य की सनक, कश्ती की पतवार को रूकने न देगी.

समस्त नवीन रचनाकारों, गांव के रहने वालों, छात्रावास में रहकर पढ़ने वालों, समस्त पान वालों, चायवालों, नाई दुकान वालों, खेती–किसानी करने वालों से विनम्र अनुरोध है कि अपने भीतर बहने वाली गंगोत्री को रास्ता दें. इस पत्रिका के आंदोलन का हिस्सा बनें. आपका और आपकी रचनाओं का स्वागत है. ये हमेशा याद रखें कि खूब पढ़ा लिखा ही साहित्यकार नहीं होता है, बल्कि आम आदमी ही साहित्य का वाहक होता है. अपनी रचना भेजते हुए जरा भी संकोच न करें. साथ ही स्थापित रचनाकारों से भी विनम्र अनुरोध है कि अपनी विशिष्ट रचनाओं से इन नये नवेले लोगों का मार्गदर्शन करें. उनका हाथ पकड़कर आगे करने वाली रचनाओं से सहयोग करें.

लोक जीवन लोक संस्कृति और आम लोगों की कहानियां, कवितायें, लेख आदि जो वास्तव में आम जीवन से जुड़े हैं उनका सदैव स्वागत है. चार सौ से भी ज्यादा पत्रिकाओं में छपने वाले उन स्थापित रचनाकारों से सहयोग की विनम्र अपेक्षा है. प्रवेशांक आपके हाथ में है, जो छत्तीसगढ़ के बस्तर जिले की भौगोलिक विषमताओं और सीमित साधनों की उपलब्धता के बाद भी संभव हो पाया है. हमें इस आंदोलन को चलाये रखने के लिए धन की आवश्यकता होगी जो आप स्वेच्छानुसार दे सकते हैं, परन्तु कम से कम पंचवर्षीय सदस्यता अवश्य लें.

शेष शुभ

आपका सनत जैन

पाठकों की चौपाल

आप नयी पत्रिका ''बस्तर पाति'' का प्रकाशन करने जा रहे हैं–शुभकामनाओं सहित बहुत–बहुत बधाई. साहित्य संसार का यह अंकुर शीघ्र ही वृक्ष बन जाये ऐसी शुभेच्छा है. आशा है कि यह पाति बुद्धिजीवियों के जगत का ज्ञान–प्रकाश चारों दिशाओं को उजागर करे और आपका अथक प्रयास इसकी सफलता में चार चांद लगाये.

श्रीमति कमलेश चौरसिया, नागपुर

मैं अपनी अस्वस्थता के कारण अपनी लघुकथाएं समय पर भेज नहीं पाया. आपकी पत्रिका हिंदी साहित्य जगत में माइल स्टोन सिद्ध हो. मेरी और कथा सागर परिवार की यही शुभकामना है. यह पत्रिका आपकी कार्यकुशलता का सशक्त प्रतिमान बने. यह भी कामना करता हूं.

अनेकानेक शुभकामनाओं सहित.

डा0 तारिक असलम 'तस्नीम', सपांदक कथासागर, पटना

यह जानकर हार्दिक प्रसन्नता हुई कि आपके द्वारा त्रैमासिक पत्रिका का प्रकाशन होने जा रहा है. हमारी शुभकामनाएं प्रेषित हैं.

संतोष श्रीवास्तव 'सम', बरदेभाटा, कांकेर

बस्तर जैसे पिछड़े क्षेत्र से नई पत्रिका प्रकाशन की योजना हिम्मत का काम है. इस हिम्मत के लिए आपको साध ुवाद. पत्रिका समय के साथ प्रगति करे ऐसी भावना एवं शुभकामना के साथ आपका.

विमल तिवारी, जगदलपुर

आपकी पत्रिका के संबंध में जानकारी मिली, बड़ा अच्छा लगा जानकर कि आप अपने क्षेत्र के लोगों को लेकर पत्रिका प्रकाशित कर रहे हैं. वर्तमान समय में जहां हर कोई नाम के लिए ही किसी न किसी प्रकार से जुड़ा है वहां ऐसा सार्थक प्रयास बेहद आशाजनक लगता हैं. हमारी शुभकामनाएं एवं बधाई स्वीकार करें. किसी भी प्रकार के सहयोग के लिए निसंकोच कहें.

सुरेश विश्वकर्मा, जगदलपुर

बधाई एवं शुभकामनायें आपके इस साहसी कदम के लिए. आपकी पत्रिका श्रेष्ठ पत्रिका बने और आपकी लेखनी में भी पैनापन आये.

आशीष राय, जगदलपुर

बस्तर क्षेत्र से एक दमदार साहित्यिक पत्रिका की जरूरत थी जिसकी कमी आप पूरी कर रहे हैं. आप वाकई साधुवाद के पात्र हैं. 'बस्तर पाति' एक बड़ा नाम बनकर हम बस्तर वालों को गौरवन्वित करे. आपकी पत्रिका का उद्देश्य पूर्ण हो. आपके माध्यम से नये साहित्यकारों को प्लेटफार्म मिले और वे अपनी एक विशेष पहचान बना पायें.

श्रीराम महावर, जगदलपुर

आपको बहुत–बहुत बधाई. आपने नये–नये लोगों को मंच प्रदान करने के लिए जो प्रयास किया है वह काबिले–तारीफ है. इस मंच को आप हमेशा नये–नये लोगों के लिए खुला ही रखना जिससे संभावनाशील लोगों को अपनी प्रतिभा साबित करने का मौका मिले. पत्रिका में कहानी कविता के अलावा समसामायिक विषयों पर विमर्श होना जरूरी है इसका आप जरूर ध्यान रखेंगे.

विवेक कुमार, मनेन्द्रगढ़ छ.ग.

फेसबुक एवं पत्र के माध्यम से जानकारी मिली प्रसन्नता हुई कि आप लगातार प्रयास कर रहे हैं कि लोग अपनी रचनाएं आप तक प्रेषित करें. सुदूर आदिवासी क्षेत्र की ये पत्रिका एक मिसाल बनकर आये और बस्तर संबंधी बाहरी सोच को करारा जवाब दे. लगातार मेहनत करना, मेहनत से न डरना. हमें भी याद करना.

प्रभाकर मिश्रा, जगदलपुर

लोककथा

कला, साहित्य, संगीत, खेलकूद इत्यादि रचनात्मक चीजों की जरूरत हम महसूस करतें हैं– क्यों ?

यह तो एक तथ्य है कि मनुष्य जितना दिखाई देता हैं वह सिर्फ उतने तक ही सीमित नहीं हैं, अर्थात् मनुष्य के इस भौतिक आयाम के अलावा कई विभिन्न आयाम हैं– मानसिक, आत्मिक इत्यादि. जैसे–जैसे मानव विकसित होता गया है, उसका ऊपरी स्वरूप कम, भीतरी स्वरूप अधिक सुसस्कृत और सुरूचि सम्पन्न होता गया है। यह सहज है और प्राकृतिक भी– मनुष्य के विकास की गति उसके केंद्र की ओर! पर यह प्रक्रिया बहुत सरल नहीं, बल्कि एक जटिल, संश्लिष्ट किस्म का स्वरूप लिए होती है. कथा, कविता, चित्रकला से लेकर अभिनय, नाट्य–नृत्य जिस ओर नज़र दौड़ाइए – मानव अभिरूचि का खाका बहुत कुछ ऐसा ही दिखता प्रतीत होता हैं– सरल से जटिल होती जाती प्रक्रिया! अगर यह स्वाभाविक है तो इसे कोई रोक भी नहीं सकता, यहां पर विचार इसी प्रश्न पर करने की कोशिश की जा रही है कि लोककथा या लोककला या लोकसंगीत क्यों आज भी, चाहे वह मनुष्य जितना भी, सांस्कृतिक ऊंचाई हासिल कर चुका हो और अपनी सोच सुविकसित कर चुका हो, विचारों में संश्लिष्ट हो, मगर 'लोक' कला या संगीत या कथा के सहज जादू से अछूता नहीं रह सकता। अर्थात् वह उसे नापसंद नहीं कर सकता। (अपवाद छोड़ दें) क्यों ? क्या लोक कलाएं हमारे आदिम स्वरूप की पहचान हैं ? क्या यह इस कारण संभव है कि मनुष्य चाहे जितनी ऊंचाई या गहराई पा ले वह अपने आदिम वृत्तियों से परे नहीं जा सकता ?

यहां अनेक सवाल खड़े हो सकते हैं और तदनानुसार जवाब भी दिए जा सकते हैं.

थोड़ा लोककला पर विचार करते हैं, विशेषकर लोककथा के सन्दर्भ में!

लोककलाओं के साथ एक बहुत अच्छी बात ये रही हैं कि ये बहुत लचीली होती आई है. सभ्यता के इतिहास से एक ही कथा भिन्न–भिन्न आंशिक परिवर्तनों के साथ अपने समय व परिवेश को ध्यान में रखते हुए परिवर्तित होती रही हैं. कथा, गीत, नृत्य, चित्र, स्तर पर. और ये आज भी बदस्तूर जारी है. हम सभी जानते हैं कि इनके रचयिता अज्ञात ही रहे हैं, सच यह भी है कि ये अपने मौखिक रूप में एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी स्थानांतरित होते गये. इनका कोई इतिहास नहीं खोजा जा सकता है. मानव इतिहास ही इनका वास्तविक इतिहास प्रतीत होता है.

जितना कठिन है लोककलाओं का इतिहास ढूंढना, उससे कमतर कठिन यह नहीं है कि इनका आकार–प्रकार खोजा जाए– यथा पौराणिक लोक कथाएं, परी कथाएं, वेताल कथाएं, मिथक कथाएं, जानवरों, पशु–पक्षियों पर आधारित कथाएं इत्यादि. जिनमें राजा–महाराजाओं के अविश्वसनीय किस्से होते हैं, जो सम्बन्धित धर्म–संस्कृति के जबरदस्त वाहक होते हैं, जिन नायकों–महानायकों पर लोगों को गर्व होता है और उनकी मिसाल को राष्ट्रीय/क्षेत्रीय पहचान के रूप में दिया जाता है। जिनका मिथक या पौराणिकता, ऐतिहासिक तथ्यों को एकदम से खारिज कर देती हैं – आज क्या यह विश्वास नहीं किया जाता कि हनुमानजी समुद्र पार कर गये थे, या हिमालय उठा लाए थे, या कर्ण कवच–कुण्डल के साथ धरती पर अवतरित हुआ था, कि विक्रम के सर पर वेताल सवार होकर कहानी सुनाता था और कहानी के अंत में सुनाई कहानी का उत्तर मांगता था, कि भीम को दस हजार हाथियों का बल था या भीष्म तीरों की शैय्या पर कई दिनों तक सोए रहे. कि मध्यकालीन वीर युद्धभूमि में लड़ते–लड़ते एक–दूसरें के सर कलम कर स्वर्ग चले जाते हैं और वहां भी बिना सर के एक–दूसरे पर तलवार से वार..... ! बहुत सारे उदाहरण हैं.

हालांकि रामायण–महाभारत को क्लासिक का दर्जा है पर ये अपने अन्तः स्वरूप में मूलतः लोककथाएं हैं जिनका अधिकांश अतीत 'लार्जर दैन 'लाइफ' है, वह चरित्रों के मार्फत से जीवन में अविश्वसनीय, असंभव घटनाओं को अंजाम देता है. राम, समुद्र सुखा देने को तत्पर है, रावण के दस सिर हैं जो कटकर भी फिर–फिर से जुड़ जाते हैं उसके 'प्राण' भी कहीं और सुरक्षित हैं, जैसे एक राक्षस का प्राण किसी तोते में था और तोता किसी अज्ञात, दुर्गम स्थल पर गोपनीय तरीके से रखा गया था. राक्षस को मारना है तो उस तोते को मारना पड़ेगा.

तथ्य, यथार्थ, सत्य या इतिहास ? क्या आज कोई यह इनकार कर सकता है कि राम की जन्मस्थली अयोध्या नहीं है, या द्वारका, मथुरा, वृंदावन का पौराणिक महत्व नहीं है.

जो यह प्रश्न उठाते हैं कि क्या साहित्य व्यक्ति या व्यक्ति के विचार परिवर्तित कर सकता हैं, उन्हें ध्यान देना चाहिए कि गल्प या किस्सों ने तथ्यात्मक इतिहास को कब का खारिज कर स्वयं स्थापित हैं. इतिहास अर्थात् तथ्यात्मक सत्य–शायद मनुष्य हाड़–मांस का एक रोबोट होता तो इन तथ्यों की ओर भागता, मगर नहीं, मनुष्य उस अज्ञात, अविश्वसनीय चमत्कार या दुर्लभ

की ओर भागता है जिनके अस्तित्व पर ही प्रश्न–चिन्ह लगा रहता है. मनुष्य को यह फेंटेंसी, अतिअविश्वसनीयता, क्यों आकर्षित करती है ? क्योंकि शायद वह यथार्थ में स्वयं अधूरा महसूस करता हैं, या अज्ञात उसे आकर्षित करता हैं ? रोमांच, दूर की चीजों के प्रति गहरा लगाव ? कहीं ईश्वर (और शैतान भी) का जन्म भी इन्हीं कारणों के तहत हुआ प्रतीत नहीं होता ?

सवाल ढेर सारे हैं. पहले भी ऐसे प्रश्न पूछे गये हैं और जवाब भी दिए गये हैं –होंगे –होते रहेंगे.

पुनः अपनी बात पर आता हूं. लोककथाओं की अन्य विशेषता जो भिन्न देशों– भिन्न परिवेशों में अलग अलग तरीके से कही सुनी गयी हैं, अपने समय व परिवेशों के मद्देनजर परिवर्तित होते हुए. वेताल या भूतों की कहानी, कहीं गुस्सैल ऋषियों के शाप से उत्पन्न किस्से. कहीं देवताओं के अभिशाप या वरदान से उत्पन्न कहानियां. सुपर नैचुरल होना लोककथा की विशेषता है. चमत्कार या जादुई यथार्थ पग–पग में बिंधे हैं. आगे रास्ते में कैसा मोड़ आएगा, नहीं पता! मनुष्य की जिज्ञासा यहां खूब उत्तेजित होती हैं. रोमांच बना रहता है. और अंत में एक विश्वास– कि नायक या नायिका के साथ अंत अच्छा होगा.

इस अटूट विश्वास को पौराणिक या लोककथाओं ने कभी भंग करने का प्रयास नहीं किया. कथा में सजा का पात्र बनाया गया है तो सिर्फ खल को!

क्या इस गहरे विश्वासी होने का कारण ही यह तो नहीं कि चरित्र नायक से जुड़ी तमाम जगह, परिवेश हम सहज स्वीकार कर लेते हैं और तथ्यों की तरफ सोचना भी नहीं चाहते.

लोककथाओं में तथ्य या इतिहास गौण रहे हैं – हमने तो चरित्रों के ''लार्ज देन लाइफ'' को ही इतिहास मान लिया है. और यह कमोबेश दुनिया के सभी हिस्सों में है.

यहां फिर घूमकर वही बात आती है–विश्वास! क्या मनुष्य एक विश्वासी या सहज स्वीकार करने वाला प्राणी हैं, या यह कथाओं –मिथकों व क्लासिकों की ताकत हैं कि कथा तत्वों के प्रवाह में आकर वह कुछ भी यकीन करने को तैयार हो जाता हैं.

जाहीर हैं – सत्य एक आयामी नहीं हो सकता!

फिलहाल, लोककथाओं या अन्य कथाओं में वे चाहे परीकथाएं हों, वेताल या भूत कथाएं हों, एय्यारों की कथाएं हों, जानवरों को केंद्र में रखकर रची गई कथाएं हों– मानव मूल्य को हमेशा अक्षुण्ण रखा गया हैं. बच्चों के साथ–साथ अल्प पढ़े लोगों के लिए भी ऐसी कथाएं सहज ग्राह्य हैं. आज धर्म सम्बंधित उपदेशक लोककथाओं पर आधारित किस्सों के जरिए अपनी बात कहते हैं, यही नहीं, विश्वविद्यालयों में आधुनिक मैनेजमेंट–फंडा के पाठ तक लोककथाओं की तर्ज पर पढ़ाएं जाते हैं. जाहिर सी बात है इनकी ताकत ग्राहता, सहजता और परिवेश के अनुकूल इनकी लोच! ये सारी खूबियां समकालीन या आधुनिक साहित्य में ढूंढना मुश्किल ही है क्योंकि इनकी संरचना ही हर स्तर पर, भाषा से लेकर फार्म तथा विषय तक, बहुत जटिल होती हैं कर्म एक खास तरह के पाठक वर्ग की मांग करते हैं.

इसका सीधा सा मतलब ये हैं कि आधुनिक साहित्य का पाठक लोककथाओं का पाठक हो सकता हैं, लेकिन, संभव है लोककथाओं का पाठक आधुनिक साहित्य को छू भी न सके.

इन सारी बातों का यहां लिखने का क्या प्रयोजन है, खासकर हिन्दी के पाठकों के मद्देनजर. पिछले कुछ वर्षों से जिस तेजी से हमारा समय बदला है और जिस तेजी से तकनीक का हमारे जीवन में दखल हो रहा हैं – और यह प्रक्रिया और तेज होने वाली हैं – इसे देखते हुए साहित्य के समक्ष संकट तो नहीं, मगर चुनौती तो अवश्य खड़ी हो गई हैं. पाठक तो ऑडियो–वीडियों के सहारे चला गया हैं. शब्दों का अस्तित्व कथा सिर्फ 'कम्यूनिकेट' या 'चैटिंग' के लिए सीमित रह गया है ?

बेशक चुनौती गंभीर हैं और सिर्फ एक उपाय कारगर सिद्ध नहीं होंगे, लेकिन शब्द की सत्ता क्या मौजूद हैं, इसकी सत्ता हैं, इसके लिए शब्द की क्षमता, मानव के संवेदना –विचार–तंत्र इत्यादि को समझने का भरसक प्रयास करना समीचीन होगा. वरना आधुनिक साहित्य चंद आधुनिक लोगों के लिए लिखे जाते रहेंगे.

लोगों का राग, कथा से, कलाकर्म से बना रहे, वर्तमान ऑडियों–वीडियों के दौर में हमारी कथा कैसी हो, –प्रश्न विचारणीय हैं और इसका जल्द या आसानी से हल मिलनेवाला भी नहीं है. पाठकों की समस्या दुनिया की हर भाषा में बढ़ी हैं और दुनिया भर के लेखक–प्रकाशक अपने पाठकों तक अधिक से अधिक पहुंचने हेतु सतत् प्रयत्नशील है. (शायद हिन्दी भाषा–भाषी यहां अपवाद है, क्षमा करेंगे.)

लोककथाओं / कला पर विचार करते हुए हम इसे अस्वीकार नहीं कर पा रहे हैं कि मनुष्य आज जो एक 'सॉफिस्टकेड बॉडी' बन बैठा है, आज भी कहीं न कहीं बहुत भीतर से ही सही, किसी कोने में ही सही, मगर अपने स्वरूप सा मूल में आदिम है.

राग, संस्कार, संसार की वासनाएं हमारा पीछा छोड़ने वाली नहीं–इन चीजों को हमारा बाजार आए दिन, सुबह शाम उत्तेजित कर रहा हैं, लेखक–विचारक क्यों पीछे हैं ? लोककथाएं / कलाएं हमारी आदिम भावनाएं–जिज्ञासा, रोमांच, अविश्वसनियता, महान आदर्श, प्रेम–घृणा, अज्ञात के प्रति लालसा जगाने में समर्थ रही हैं – हमें क्या करना चाहिए, क्या एक रास्ता इस और भी जाए यह उचित नहीं लगता ?

हमें आज ऐसे आधुनिक साहित्य की जरूरत है जो ऐसा विकल्प तैयार करे जो टीवी या अन्य माध्यमों में दर्शाना संभव नहीं. यह एक तरह से कांटे से कांटा निकालने जैसा ही कुछ है – और यह कांटा हिन्दी साहित्य में 'लोककथा' नाम का कांटा हो तो क्या बुरा ?

अर्थात् आधुनिक रचनाशीलता कैसी हो – लोककथाएं और तमाम लोककलाएं हमें राह दिखा सकती हैं.

कथाओं में जिज्ञासा, महान चरित्र व आत्मिक द्वन्द की स्थिति

हमारी आदिम भावनाएं जागृत करने में लोककथा या लोककला, चाहे वह संगीत हो, नृत्य हो, वादन हो, कोई भी कला रूप हो, – वे जितना सक्षम होती हैं उतनी शास्त्रीय या परिष्कृत कला रूपों में वो बात नहीं दिखाई देती. यहां 'लोक' बनाम 'शास्त्र' के बीच के द्वन्द पर विचार करना मेरा प्रयोजन नहीं है, ना ही किसी की श्रेष्ठता सिद्ध करना. बात सीधी सी है–हम लोक साहित्य, लोककला के मार्फत मानव की आदिम वृत्तियों को जानने का प्रयास कर सकते हैं विषयों–तत्वों को जानकर ही, अर्थात् ज्ञान से ही हम आज की या आने वाले दिनों की चुनौती का सामना कर सकते हैं और खासकर तब, जब कला–कर्म, चाहे कोई भी कलाकर्म हो, आधुनिक मानव के लिए एक चुनौती बनता जा रहा है. यह स्वाभाविक हैं – क्योंकि मनुष्य जैसे–जैसे सभ्य या विकसित (?) होता जायेगा, यह चुनौती नये–नये रूप में प्रगट होती जायेगी. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इस ओर बहुत पहले ही आगाह कर दिया था कि सभ्यता के विकास के साथ कवि कर्म कठिन होता जाएगा. हम साफ देख सकते हैं – यह आधुनिकता या अति आधुनिकता हमें कहां ले जा रही है. जीवन, पर्यावरण, परिवेश, कला–साहित्य, संगीत–नृत्य, चित्रकला इत्यादि हर फील्ड में. साफ है –तकनीक का दखल बढ़ता जा रहा है. पहले कपड़ों की बुनावट सरल और लिबास स्पष्ट होता था, आज सिंथेटिक युग हैं और मनचाहे फैशन बिखरे पड़े हैं. हम चारों ओर से इस तकनीकी प्रहार से आहत हैं. तकनीक का ऐसा हमला मानव इतिहास में शायद ही देखने को मिला हो.

कथा साहित्य और कलाओं में यथार्थवाद, आधुनिकतावाद, उत्तरआधुनिकतावाद, जादुई यथार्थ, अति आधुनिकता इत्यादि क्या हैं ? सिर्फ लिखने की कला की तकनीक ? लेखक दावा करता है कि उसने ऐसी तकनीक से कथा या कविता रची है कि ऐसा पहले कभी, देखा न सुना गया. चाहे सिनेमा हो, नृत्य हो, संगीत हो, हर ओर यही शोर सुनाई दे रहा हैं और मजेदार कि इस विषय में सचमुच यही पूरी दुनिया 'ग्लोबल' होती दिखती है. बधाई! बहुत–बहुत बधाई दोस्तों!

डांस कम सर्कस ज्यादा, संगीत कम कनफोड़वा कम्प्यूटर जनित ध्वनि ज्यादा, सिनेमा में एक्शन ही एक्शन, तकनीक का भरपूर दोहन करना है. लेखन में – हम किसी से कम नहीं! हमारे पास अति जादुई कहानी हैं.

यहां सही या गलत को 'स्पॉट' करने का इरादा नहीं हैं. यह तो गति है, प्रगति है. यह जरूरी है. भले कहीं पहुंचे नहीं!

लोककलाओं की तकनीक क्या हैं ?

लोकथाएं या कोई भी लोककला सीधे दिल से निकलकर बात दिल को छूती हैं. अगर व्यक्तिगत तौर पर आपको यह चुनाव करना पड़े कि शास्त्रीय गीत सुनना पसंद करेंगे या लोक गीत ? लोककथा पढ़ना चाहेंगे कि अब उत्तर आधुनिक कथाएं. लोकवाद्य सुनना चाहेंगे कि कम्प्यूटर द्वारा बजाई बांसुरी ? सवाल अपने आपसे पूछा जा सकता हैं.

लोककथाएं अगर तकनीक पर बहुत जोर नहीं देती तो आखिर इसकी ताकत कहां है. कहीं इसके भीतरी मर्म तो नहीं जिन्हें कहानी के तत्व कहते हैं, और उसमें भी कहानी का मूल तत्व– कौतुकता या रोमांच को मुख्य आधार बनाया जाता है– मानव मूल्यों की रक्षा करते हुए ?

शायद यह बहुत करीब है, सत्य के निकट है कि इसी एक तत्व ने आदिम मानव से लेकर आज तक एक जटिल होते जाते मानव के भीतर आज भी, दबे भाव से ही सही, मगर कहीं बैठा है और हमें 'गाइड' करता रहा है. शायद शिक्षा ने वो काम इस सभ्यता के लिए नहीं किया होगा जो इन कथाओं ने मानव शिक्षा और संस्कृति, स्थान, क्षेत्र में किया हैं. यह एक 'सोशल

कंट्रोल' का माध्यम भी अनजाने ही सही, मगर रहा है. आचार्य विष्णु पंडित द्वारा रचित पंचतंत्र कथाओं का मूल उद्देश्य ही था बिगड़े शहजादों को ठीक करने हेतु कहानियों–किस्सों के मार्फत दी गयी शिक्षा! रामायण ओर महाभारत के विचित्र चरित्र आम और खास सभी तरह के लोगों के बीच आज भी प्रेरणास्त्रोत हैं और लोक उनमें अपना जीवन/छवि बड़ी आसानी से ढूंढ लेता हैं. हमारी सांस्कृतिक ताकत अगर कहें कि ये किस्से–कहानियां ओर अन्य लोककलाएं ही हैं तो अतिश्योक्ति नहीं होगी. बल्कि हम वास्तव में अगर कुछ हैं, तो इन्हीं की बदौलत. हम यहीं पर कुछ हैं. यह हमारा राष्ट्रीय गर्व भी है, पहचान भी.(यह मजेदार है कि इस 'फ्रेंड़बुक' के जमाने में हम सब कुछ बड़ी तेजी से भूलते जा रहे हैं. लोककलाओं की तकनीक क्या हैं ?)

हमारे पास आदर्श या महान या उच्चतर मानवीय मूल्य यदि हैं तो इन्हीं से. यही हमारी आंतरिक ताकत हैं.

कौतुकता, जुगुप्सा, रोमांच जगाने वाली तकनीक ही एक सफल कथा–टेकनीक है ? नहीं. लेकिन बहुत हद तक.

एक राजकुमार नदी के तीर स्नान करने जाता है. उसे एक सोने जैसे चमकती केशराशि दिखती हैं. वह केशराशि किसी स्त्री का होना प्रतीत होता है. राजकुमार सोचता है – हो न हो, कोई युवती है जो इसीं जलधारा पर स्थित हैं, जिसकी केशराशि सोने की है, वह कैसी होगी ? कितनी सुन्दर जिसके केश ही स्वर्ण आभायुक्त हैं ?

राजकुमार ऐसा विचार कर तुरंत जलधारा के विपरीत प्रवाह में तैरते हुए निकल पड़ता हैं. अवश्य ही वह सुन्दरी इस नदी में स्नान करने आती होगी.

उसे पाना ही उसका लक्ष्य हैं.

इस तरह की सेटिंग एवं जिज्ञासा के साथ लोककथाएं भरी पड़ी हैं. इस कथा के प्रारंभिक अंश में ही पाठक जाने–अनजाने मुख्य चरित्र के साथ स्वतः ही समभाव में जीने लगता है. युवती कैसी होगी–यह कल्पना भी पाठक के मन में पूरी आवेग के साथ जागृत हो जाती है. अब वह पूरी तरह नायक के साथ हो जाता है. नायक 'एडवेंचर' के लिए मानो निकल पड़ता है. इस संसार की प्रकृति की तरह ही इस कथा एवं उसका नायक का भविष्य अज्ञात है – अनजाने के प्रति तीव्र आग्रह हमारी तमाम सुषुप्त आशाएं यहां उद्वेलित हो जाती हैं.

जिज्ञासा – लालसा– उत्साह और क्रिया स्वरूप साहस! इन सब ने मिलकर कथा को, पात्र को गति दिया. और यह गति बढ़ती कथा के साथ कम नहीं होती. बहुत सारे दिन–रात की मेहनत के बाद एक भवन मिलता हैं जहां उसकी कल्पना की सुन्दरी, स्वर्ण केशराशि युक्त युवती कैद है. उसे एक राक्षस ने कैद कर रखा है और–शीघ्र ही उससे विवाह करने वाला हैं. वह सुन्दरी किसी और प्रदेश की राजकुमारी है. राजकुमार सुन्दरी को राक्षस से मुक्त कराने का प्रण करता है, मगर राक्षस को पराजित करना आसान नहीं हैं. उसके प्राण कहीं और हैं– यह रहस्य बरकरार है.

कहने की आवश्यकता नहीं कि पाठक अब तक कहानी में डूब चुका है. वह कई–कई मनोभावों को एक साथ जी रहा होता है. कथाकार जानता है– कथा तभी बनेगी जब जीवन के कई प्रसंग, कई आयाम एक के बाद एक उद्घाटित होते जाएंगे. वह जाएगा, राजकुमारी उसे मिलेगी, वह उसे पसंद करेगी और विवाह हो जाएगा इससे कथा नहीं बनती. कथा सामान्य घटना में असामान्य बातें दिखाने वाली हों या घटना ही इतना असामान्य हो कि हमें चौंका दे. और हम कहें कि वाह! ऐसा तो सोचा भी नहीं था.

जिज्ञासा जगानेवाली कशिश तो यहां है साथ ही बुराई पर अच्छाई की जीत के प्रति प्रतिबद्धता. देखा जाए तो कहानी इतनी है. अच्छाई के प्रति प्रतिबद्ध होना और बुराई खत्म करना मानवीय मूल्य है जिसकी स्थापना हमारी कथा विरासत करती आई हैं.

पर, ऊपर के कथा–प्रसंग में घटनाएं बाह्य हैं, जीवन के गहरे प्रसंग, सत्य के प्रति सही पहचान और सही पक्ष के समर्थन में खड़ा रहने की दृढ़ता जैसे मानवीय मूल्य हमें पौराणिक क्लासिकी में ही देखने को मिलते हैं. वहां द्वन्द, जीवन संघर्ष न सिर्फ बाहरी स्तर पर घटित होता हैं, बल्कि उससे अधिक पात्र के भीतर!

लक्ष्मण मेघनाथ के बर्छा–प्रहार से मूर्छित हैं. राम धनुष बाण रखकर विलाप कर रहे हैं. हाय! वे माता को अपना मुंह कैसे दिखाएंगे. सभी चिंतित हैं. सिर्फ हनुमान सक्रिय हैं और लंका, दुश्मन के जमीन के राजवैद्य सुषैण के मन में आए ध र्मसंकट का समाधान कर रहे हैं. राजवैद्य के लिए राजद्रोह है शत्रु पक्ष की किसी तरह की, सहायता करना. उनके मन में संघर्ष, मरीज का इलाज करें या राज्य के नियमों की अवज्ञा; यह सत्य हैं, सुषैण सही कह रहे हैं. लेकिन ज्ञानी हनुमान अड़े हैं, वे किसे आतंकवादी की तरह वैद्यराज को उठा लाने नहीं गये हैं, न ही, वे उनका संशय, धर्मसंकट, जो दो या दो से अधि क सत्यों के बीच सही सत्य के पक्ष में या किस पक्ष का साथ दिया जाए–निर्णय नहीं कर पा रहे हैं–से युक्ति–युक्त तर्क कर रहे हैं.

सुषैण द्वन्द से ऊपर नहीं आ पा रहे हैं. हनुमान समझाते हैं, सुषैण पहले वैद्य हैं, बाद में राज्य के नागरिक, सत्य दोनों हैं. मगर वैद्य का कर्म पूर्ण करना सही धर्म है क्योंकि वैद्यधर्म मानव–मात्र के लिए हैं. अतः स्पष्ट राजद्रोह होने पर भी सुषैण मानवधर्म के हित में निर्णय लेते हैं.

यहां धर्म का अर्थ क्या करना, क्या नहीं करने से है. सुषैण को हनुमान की बात, या कहे उसे सत्य को स्वीकार करना पड़ा तो बृहत्र निकाय को समर्पित था. अर्थात् एक सत्य ने दूसरे सत्य को पराजित किया.

ऐसे प्रसंग, मानव जीवन में, चाहे किसी भी स्थान का काल में हम चले जाएं, पीछा छोड़ने वाले नहीं. क्योंकि इस सृष्टि के मूल में ही द्वन्द, आघात का परिमाण मौजूद हैं.

रोमांच या कर्म–अकर्म अथवा धर्मसंकट यहीं सत्य नहीं हो जाता. वैद्यराज सूर्योदय से पूर्व हनुमानजी को संजीवनी लाने कहते हैं'– वे संजीवनी की पहचान एवं लक्ष्मण भी उन्हें बताते हैं.

क्या हनुमान जी सीधे उड़कर बूटी उठा लायेंगे, समय पर ? बात सीधी–सादी होती तो यहां कहानी या कहे मानव जीवन का महाकाव्य नहीं लिखा जाता. महाकवि ऐसे ही प्रसंगों का सटिक चित्रण करता है कि ऐसे संकटों का सामना कैसे किया जाए. असल में– महाकाव्यकार जीवन के उन प्रसंगों के चरित्र को समझता और हमें समझता है कि शाश्वत हैं और इनका सामना कर ही हम 'हम' हो पाते हैं.

हनुमान के मार्ग में पहला अवरोध बनकर सुरसा आती हैं और 'भूख' के महत्व को मानों समझाना चाहती है. भूखे के धर्म के समक्ष इस सृष्टि में कोई और धर्म नहीं, स्वयं अति मानव राम का भी नही. हनुमान बड़ी चतुराई से सुरसा के ग्राह्य बन जाते हैं मार्ग से भटके बिना. सुरसा अपने भूख को बहुत बड़ा, बहुत ही बड़ा कर लिप्सा का मुंह फाड़कर मानों कहना चाहती है कि भूख शांत करने के लिए विशालतम नहीं लघुतम ही पर्याप्त है. यहां हनुमान के सामने जो धर्म संकट उत्पन्न हुआ है वह शब्दों में कम, चित्रों में ज्यादा सटिक व्यक्त हुआ हैं. यह दृश्य एक सुन्दर मेटाफर हैं. भूख, लिप्सा, धर्म–अधर्म का विवेक इत्यादि के लिए.

संजीवनी तक पहुंचने से पूर्व हनुमानजी को कई और मुश्किलों का सामना करना पड़ता हैं – रावण के जासूस राक्षस छल और माया से उन्हें भ्रमित कर मार्ग से दूर ले जाना चाहते हैं. हनुमानजी छल से बोले प्रवचन भी भक्तिभाव से सुनते हैं लेकिन असलियत ज्ञात होते उससे निजात भी पाते हैं. यानि प्रभु भक्ति या ईश्वर गुणगान का सत्संग(इसे साहित्यिक गोष्ठीं आप समझें) का मौका किसी भी सूरत में नहीं छोड़ना चाहते. अन्त तक, कठिनतम समय में भी, दुर्गम राहों पर भी सदाचार, व्यवहार का दुर्लभ दृश्य यहां उपस्थित होता हैं.

समस्या ने अभी भी पीछा नहीं छोड़ा. भोर होने में बहुत समय बाकी नहीं. हनुमानजी संजीवनी तब पहुंच तो जाते हैं मगर बताए लक्षण बहुत सारी बूटियों में दिखते हैं. वे पूरा पहाड़ ही उठा लेते हैं.

हनुमाजी बूटियों के विशेषज्ञ नहीं हैं मगर ज्ञान व विवेक के विशेषज्ञ अवश्य हैं. हमारा भौतिक ज्ञान कहीं न कहीं जाकर सीमित हो जाता है, पर अभौतिक या आन्तरिक ज्ञान हमारे साथ हो तो चिंता की बात नहीं.

अंततः एक अंतिम प्रसंग जब आकाशमार्गी हनुमान को देखकर राम के भ्राता भरत उनहें मूर्छित कर धरती पर गिराते हैं– का प्रसंग है. (कोई राक्षस या पिशाच समझकर) संक्षेप में हनुमान सारी बातें भरत को बताते हैं और भरत क्षमा याचना सहित राम के काज में योगदान चाहते हैं– वे हनुमान से आग्रह करते हैं कि उनकी अनुमति मिले ओर वे अपने बाण पर उन्हें संधानकर तत्काल लंका पहुंचा दें, मगर हनुमानजी विनम्रतापूर्वक इसे अस्वीकार करते हैं. उनके समक्ष इस दायित्व को निर्वाह करने का दुर्लभ मौका हाथ लगा है, यह धर्म (कर्म) लाभ उन्हें लेने दें. उस विश्वास/आस्था को यथार्थ में बदल जाने तक प्रतीक्षा और प्रयासरत रहने दें. और अंततः हनुमानजी स्वयं की क्षमता से लंका समय पर पहुंच जाते हैं. कितना दुर्लभ संदेश है – महाकाव्यकार की कलम से!

कहने की आवश्यकता नहीं कि वे तमाम प्रसंग, घटनाएं, प्रतीक जीवन की बड़ी मार्मिक, गहरी और सुन्दर व्याख्या करती हैं. पाठक कहता है– वह पहले से जानता नहीं, मगर आगे बढ़ती कथा के साथ वह प्रतिक्रिया करता हैं– ठीक, बिल्कुल ठीक यही होना चाहिए था. वाह!

समय अल्प है, कठिन है, मगर ठीक यहीं जीवन के गहरे संदेश छिपे हैं. कथा का रोमांच यहां मौजूद है, लेकिन धर्मसंकट ने, जीवन के रास्ते आए अवरोधों व द्वन्द ने तथा महान चरित्र की सटिक भूमिका ने तमाम रोमांच, कौतुकता को परे ढकेल दिया है, ठीक वैसे ही जैसे एक बड़ा सत्य छोटे सत्य को पृथक कर देता हैं. उपस्थित धर्मसंकट को खत्मकर वास्तविक धर्म (कर्म) को स्थापित करता हैं.

कहने की आवश्यकता नहीं कि जो कथा या काव्य जीवन के गहरे प्रसंगों को छूते हैं– वह पाठकों को निरंतर आंदोलित, परिमार्जित और सुसंस्कृत एक बेहतर मानव बनाते हैं.

क्या आज के कथाकारों को हमारी विरासत की ओर लौटकर नहीं देखना चाहिए, जहां की कथाओं में भौतिक द्वन्द के साथ–साथ आत्मिक द्वन्द एवं संशय की स्थिति तथा उनसे निपटने के उपाय प्रचुर मात्रा में है!

कथा में तकनीक – एक

कथाकार कहानियों में जान डालने के लिए तकनीक का इस्तेमाल करता हैं. यह बात सामान्य साहित्य से लेकर उत्तर–उत्तर आधुनिक समय की कथाओं तक में सामान्य है. साहित्य ही क्यों, तमाम रचनात्मक और उत्पादन से जुड़े क्षेत्र में मनुष्य तकनीक से घिरा हैं. वो एक तकनीक ही थी जो दो पत्थरों को घिसकर मनुष्य ने आग पैदा की, या पहिए का आविष्कार किया.

पर कथा संसार में, या अन्य कला क्षेत्रों में तकनीक कहां तक मनुष्य का हितैषी हो सकती है. प्रश्न विचार करने योग्य हैं. कला क्षेत्र ही क्यों, हर क्षेत्र विचारणीय है. क्या आधुनिक तकनीक ने मनुष्य के हाथ–पांव को निष्क्रिय नहीं किया ? उसने उत्पादकता बढ़ाया पर कई लोगों का श्रम छीनकर– उन्हें बेरोजगार बनाकर! इसका सीधा सा अर्थ हैं – चाहे कला–साहित्य हो या सामाजिक– आर्थिक मसला, पर्याप्त तकनीक के प्रयोग और हमारी जरूरतों के बीच संतुलन आवश्यक है.

कला क्षेत्र में तकनीक किस हद तक अपना दखल बढ़ाती जा रही है – इसे हम बड़ी आसानी से देख सकते है. फिल्म, संगीत, नृत्य में ये प्रथम दृष्टया ही चिन्हित हो जाते हैं.

क्या इसने हमारी रूचि को और अधिक परिष्कृत और सुसंस्कृत करने में हमारी मदद की हैं ? हां और नहीं भी. ये दोधारी तलवार हैं – असावधानी होने पर स्वयं को जख्मी कर सकती हैं.

निश्चित रूप से तकनीक का इस्तेमाल खतरनाक है औरा कुशलता की मांग करता हैं.

अफसोस कि भारत के सामाजिक, आर्थिक सन्दर्भों में तकनीक का प्रयोग नहीं हुआ है, बल्कि हमने वे तकनीक आयात किये जो पश्चिम में सफल थे, वे वहां की जरूरत थी. उसे हमने यहां भी बिना सोचे लागू किया.

आधुनिक साहित्य की सबसे लोकप्रिय विधा उपन्यास एवं शार्टस्टोरी भी पश्चिम से हमारे यहां प्रवेश पाती है, प्रेमचंद जैसे कुशल कथाकार इस 'टेकनीक' का अपने भारतीय परिवेश में सुन्दर प्रयोग करते हैं. आज हमारी यह कहानी विधा कहां–थी कहां पहुंच गयी! कहने की जरूरत नहीं कि हम आज भी कुछ नये के लिए उन्हीं का द्वार खटखटाते हैं. पश्चिम का द्वार! लेकिन जब उनके यहां लोहे की क्रांति होती है तब हमारे यहां कृषि युग में हरित क्रांति चल रही होती है, जब वहां कम्प्यूटर क्रांति आती है हम प्लास्टिक युग में जी रहे होते हैं. जब कोई आंदोलन या धारा पश्चिम में नकारा हो जाता हैं वह हमारे यहां 'शो पीस' बन जाता हैं. तब–तक पश्चिम में कोई एक नयी विधा का जन्म हो जाता है और हम बगुला ध्यान से उन पर नज़र टिकाएं होते हैं.

शारीरिक गुलामी से व्यक्ति तत्काल मुक्त हो जाता हैं, पर आत्मिक या मानसिक दासता से मुक्त होना और अपनी एक स्वतंत्र सोच होना सरल नहीं.

रही बात तकनीक और मनुष्य के रिश्ते की, कि यह कैसे हो, कितनी हो, तो इस विषय में इतना कहना पर्याप्त होगा कि तकनीक मनुष्य के लिए हैं, मनुष्य तकनीक के लिए नहीं! वह हमारी जब तक सहायता करता हैं, उसका स्वागत है! न जाने कब वो हम पर शासन करना प्रारंभ कर दें और हमें –अर्थात् मानवीयता खा जाए– अतः पर्याप्त सर्तकता आवश्यक है.

क्या आज की कहानी में तकनीक (शिल्प ?) ने कहानी के तत्वों को ही खारिज नहीं कर दिया हैं ?

इस सवाल से हम बच नहीं सकते. हम पूरब और पश्चिम का विवाद छोड़ दें तो भी यह कहना अनुचित न होगा कि आधुनिक साहित्य तकनीकी मार से बोझिल हो चला है. उसने हमारे भीतर की आदिम और सरल वृतियों को अनदेखा किया हैं.

आधुनिक और उत्तर–आधुनिक कथा टेकनीक पर यहां चर्चा मेरी दिलचस्पी में नहीं है. मैं सिर्फ अपनी पौराणिक कथाओं, मिथक कथाओं, परी या वेताल या जानवर कथाओं, जिन्हें मैं सम्मिलित रूप से लोककथा ही कहना पसंद करूंगा, क्योंकि भले ही कुछ साहित्य (महाभारत और रामायण) को हम क्लासिकल मानते हैं– पर मूल में उनका चरित्र लोकथात्मक ही है. कथा कहने के सारे 'टूल्स' एवं 'टेकनीक' परम्परा से चली आ रही लोककथाओं जैसी ही है. सिर्फ महाकवियों ने संस्कृत भाषा का प्रयोग किया है. जो निश्चित ही एक आम भाषा नहीं थी. गहराई से विचार करने पर कि कथा क्या है–

पर सर्वप्रथम और अंतिम रूप से भी एक बात पर दृष्टि जाती हैं कि–आगे क्या होगा ? अर्थात् कहानी में आगे क्या होगा– का भाव जो पाठक के मन में रोमांच जगाता है– हमें थ्रील करता हैं – स्पंदित करता हैं और चरित्र, परिवेश के साथ कथा में हमें बहा ले जाता है.

किसी कथा में, संभव हो बहुत गहरे मानवीय स्पर्श न हों, बौद्धिक विमर्श न हों, आत्मा का द्वन्द न हो तो भी थ्रीलर के सफल प्रयोग से पाठक कथा पढ़ने को बाध्य हो जाता हैं, और यह बड़ी सफलता हैं.

संभव है इस वक्त आपको पच्चीस लोककथाएं याद हों और आप किसी एक कथा को उठाकर देख लीजिए, उसमें कथा के मुख्य का पात्र का भविष्य अनजान हैं – रोमांच रहस्य बरकरार रहता है – और कथा आगे बढ़ती रहती है. रहस्य खुलते ही कथा का अंत हो जाता हैं.

कथा या कहानी कहने से प्रतीत होता है बस यही और सिर्फ यही वो तत्व हैं जो कहानी को कहानी बनाती है. और बाकी सारी बातें गौण हो जाती है. और हो भी क्यों नहीं, हमारे जीवन में 'समय' नाम का तत्व हैं जिसे हम कभी ईश्वर, कभी भाग्य, कभी 'डेस्टिनी' कहकर सम्बोधित करते हैं. यह कितना अनिश्चित है. अज्ञात है. रहस्यमयी है. यहां थ्रील है, एडवेंचर है, भय है, और क्या नहीं है..... ! यह जीवन का मूल है और यही 'मूल' हमारी लोक / पौराणिक / मिथक कथाओं में भी हैं. सीधा कहना चाहूंगा कि हमारी कथाएं जीवन के इसी मूल स्त्रोत से निकली हैं.

आज दुनिया की तमाम भाषाएं घटते पाठकों का रोना रोती हैं– सच भी है, बढ़ते तकनीकी दखल ने पुस्तक पाठकों की संख्या को गहरे से प्रभावित किया हैं, मगर मेरा विचार यह है कि अव्वल तो मनुष्य कथा–कहानी से 'दूर' नहीं हुआ हैं, वह जितना पहले था, आज भी वह उसके उतने ही पास है. बचपन से लेकर बुढ़ापे तक, कथा–सुनने और बुनने की क्रिया चलती रहती है, जाने, अनजाने भी. हां आधुनिक टीवी, वीडियो ने हमारे पाठकों को अपने पास खींच लिया है. चुनौती यह हैं कि किस तरह उन्हें शब्दों की सही ताकत का अंदाजा बताया जाए. हमारी शब्दों की तैयारी सबसे पहले उस लायक हो. हम बड़ी आसानी से कह सकते हैं कि फिल्म, टीवी की दुनिया सरलता से प्राप्त है और लुभावनी हैं, मगर, शब्दों की दुनिया ऑडियों–वीडियो की दुनिया से ज्यादा, बहुत ज्यादा विस्तृत, गहरी हो सकती हैं. सबसे बढ़कर यहां पाठकों को रूकने, ठहरने, गति कम या धीमा करने, बार–बार पढ़ने, कल्पना करने, खो जाने अर्थात् यहां समय और स्पेस पर्याप्त मिलता है जो हमारे टीवी–फिल्मों में संभव नहीं. मनुष्य एक चिंतनशील, कल्पना प्रधान प्राणी है – और कहना न होगा कि उसकी कल्पनाशीलता चिंतन के बहु–आयामी क्षेत्र, शब्दों की दुनिया में ही खुलते हैं.

बात आज की कथाओं पर आती है तो प्रश्न पूछा जा सकता हैं कि क्या आधुनिक कथाएं हमारी जिज्ञासा, हमारे भावों का शमन करने में सक्षम हैं ? निश्चित रूप से इस ओर आधुनिक कथाओं पर एक बहुत बड़ा प्रश्नचिन्ह लगता है. हम आज भी किसी मार्खेज का इंतजार कर रहे हैं जो उत्तर–उत्तर या अति–अति जादुई यथार्थवाद का आंदोलन हमारे लिए तैयार करेगा और हमारे कुछ चंद पुरोधा तत्काल उसे आयात करेंगे और हमारे पाठकों को बताएंगे– इसे पढ़ो ये है साहित्य! साहित्य का मतलब ये होता है, मूर्खों... !

हमारे पाठक इन क्रांतिकारी रचनाओं को एक 'बुड़बक' की तरह पढ़ते हैं, जिस पर समीक्षा लिखकर साहित्य के ज्ञानी हिन्दी के महान और क्रांतिकारी आलोचक जन्म लेते हैं.

अति यथार्थवादी या जादुई यथार्थवादियों का अर्थ होता है कि आधुनिक जीवन की जटिलताएं विषम हैं, यथार्थ एकरेखीय नहीं रह गयी हैं और सत्य या यथार्थ को अभिव्यक्त करने के लिए उस जीवन के जटिल तत्वों को उसी रूप में बाहर लाना होगा, जैसा कि वे हमारी जिन्दगी में हैं. सच है, हर कला जीवन की प्रतिकृति है, या जीवन की प्रतिकृति होने की जगह यह अनुकृति मात्र बनती जा रही हैं ? या ऐसा करने में यह विधा मनुष्य की भावनाओं का शमन कर पा रहा हैं ? वे अधिकतर हमारे मस्तिष्क के दायरे में बंधकर रह जाती हैं, जबकि मनुष्य चाहे वह कहीं का भी हो, एक भावनाप्रधान प्राणी होता हैं. मनुष्य इसीलिए मनुष्य था तभी एक मानव बना रह सकता है जब तक कि वहां एक भावधारा प्रवाहित है, अन्यथा वह एक रोबोट है. अब आप स्वयं बताएं, वैसी रचनाएं या कलाकृतियां जो मानवीय भावों को छूने में अक्षम है – क्योंकि वे जीवन की सच्चाई से ली गयी हैं– ऐसा इनका दावा है – कब तक पठनीय रह सकती हैं ?

आप यथार्थ के नाम पर जो कहानी टेकनीक आयात करते हैं और उन्हें भी हमारे यहां उसी तरह 'रोपते' हैं जैसा कि वे अपनी जन्मभूमि में रोपी गयी होती हैं – भले ही जलवायु और मिट्टी का गुण बेमेल हो. प्रसंगवश मैं थोड़ा ध्यान देना चाहूंगा अपने कुछ मिथिकल चरित्रों की ओर, सबसे पहले देवता शिव जिनका सम्पूर्ण चित्र ही अति–अति यथार्थवादी (सरियलिस्टिक) हैं– गले में सांप, सर पे चन्द्रमा, मस्तक से जलप्रवाहित (गंगा) कमर में बाघ का खाल, सवारी बैल, हाथ

में त्रिशूल और डमरू! आप चाहे इन एक–एक प्रतीकों पर खूब विश्लेषण कर लें, चाहे अनेकों अर्थ की व्याख्या कर लें. उसी तरह विष्णु के नाभि से निकला कमल और उससे उत्पन्न ब्रम्हा! हनुमान का अति मानव रूप अधिक और वानर रूप दोनों साथ–साथ चित्रित, गणेश का मुंह हाथी का और शरीर मानव का! इस तरह अति यथार्थवादी या अति मानवीय चरित्र मिथकों और लोककथाओं में जाने कब से कथा रूप में चले आ रहे हैं– वे हमारे इतने पास हैं कि हम उन्हें देख ही नहीं पाते.

इस तरह का अति मानवीय स्वरूप न केवल भौतिक स्तर पर है बल्कि कथा या घटनाओं के वर्णन में भी खूब मिलता है– जैसे सूर्य के अहवाहन से कर्ण का जन्म इन्द्र और वायु और अश्विनी के मानवीय पुत्र–अर्जुन, भीम, नकुल. उसी तरह विक्रम के सिर पर वेताल का सवार होना, वेताल द्वारा विक्रम को कहानी सुनना, एक ऐसी कहानी जिसमें मानवीय रिश्ते की पहचान की जाती हैं, विक्रम द्वारा सबकुछ भूलकर, अर्थात् कहानी में रम जाना और अंत में सटीक उत्तर देना. जातक कथाओं में भी बुद्ध अपने पूर्व जन्मों की कोई न कोई कथा कहते हैं जिनमें जीवन के महान आदर्श या लक्ष्य साधे गये हैं. भीष्म का तीरों की शैय्या पर लेटा रहना इत्यादि ये सभी प्रसंग अति मानवीय, अति यथार्थवादी तत्वों को दर्शाती हैं जिसने मानवीय चेतना को आज–तक प्रबुद्ध किया है और आगे भी करेंगे. मजा ये कि अत्याधुनिक मानव भी इन अविश्वसनीय प्रसंगों पर सवाल नहीं उठाता. यहां इतिहास या तथ्यात्मक बातें मृत हैं, अर्थात् मानव कल्पना, मानव आदर्श, मानव विश्वास की यहां जीत होती हैं, मैं मानवीय कल्पना को नमन करना चाहूंगा क्योंकि साहित्य का कला में जो कुछ सनातन हैं, वह इसी अनंत मानवीय शक्ति के कारण है. कल्पना! कल्पना द्वारा रोपित सच ऐतिहासिक सच से कई गुना ज्यादा सच साबित हुआ है.

पर इन मिथकों में अथाह मानवीय कल्पना द्वारा चित्रित चरित्रों में मानवीय मूल्य भरे पड़े हैं. वे कहीं भी मानवीय अच्छाई या बुराई पर जीत के संघर्ष से दूर नहीं होती. वे हमें बराबर बताते हैं कि मनुष्य एक भावशील, न्यायपसंद, सुसंस्कृत प्राणी है. मानवीय रिश्ते क्या हैं. अर्थात् मानव भावों का शमन, उनका शोध यहां खूब होता हैं.

कहानी में टेकनीक कितना प्रभावी हो सकता हैं, कितना जरूरी हैं– कुछ ऐसा ही प्रश्न इस लेख के प्रारंभ में था. संक्षेप में, मुझे यही लगता हैं कि जादुई तकनीक कमाल की तकनीक हैं – पर बात वहीं अटकती है– क्या तकनीक सिर्फ तकनीक के लिए है, या आज भी इसने कथाओं में हमारे भावों का स्पर्श भी किया है ?

कथा में तकनीक–दो

यह तकनीक ही है जिसने कई कथा रूपों और कहन की शैली को जन्म दिया है. आत्मकथात्मक, विवरणात्मक, चित्रात्मक, वर्णनात्मक इत्यादि. जब बच्चों के लिए कथा लेखन की बात आती हैं तो यह प्रश्न अत्यंत गंभीर हो जाता हैं, क्योंकि बच्चों अथवा युवा पीढ़ी या वैसे पाठक जिनमें आप साहित्यिक संस्कार डालना चाहते हैं– कैसी भी रचना उन्हें नहीं परोस सकते, चाहे उस रचना को नोबेल पुरस्कार ही क्यों न मिला हो. ऐसा क्या है जिस पर गंभीर विचार आवश्यक है, या यह जानना कि बच्चों या युवा पीढ़ी या नये पाठकों का 'टेस्ट' क्या हो सकता है.

यहां मैं कहानी के दो मुख्य रूपों का जिक्र करना चाहूंगा – वे कहानियां जिनमें वास्तविकता हों, और वे कहानियां जो चित्रण प्रधान हैं.

कथा या कलाएं हमारे जीवन या इस संसार की प्रतिकृति ही हैं– अनुकृति नहीं. हम जीवन का हू–ब–हू फोटो खींच सकते हैं पर वो शायद अच्छी कला रूप नहीं हों, या कलारूप हो ही नहीं. प्रतिकृति इसलिए कि एक पेड़ जैसा है– जैसा दिखता है वैसा हू–ब–हू चित्रित किया जा सकता हैं ना यह संभव है ना ही आवश्यक. कैमरा भी इनकी तस्वीर कैद करता है तो वह तब–तक 'आर्ट' का रूप नहीं लेता जब–तक कि उसमें 'मानवीय स्पर्श' न हो. अतः कलाएं नकल होते हुए भी उस तरह की नकल नहीं होतीं. यह रचनात्मकता नकल होती हैं और इसे प्रतिकृति कहना ज्यादा उचित है. प्रतिकृति अर्थात् कलाकार की कोशिश से एक लघुतम संसार की रचना, समानांतर दुनिया का रचाव!

अब इस दुनिया के विषय हम तक किस तरह पहुंचते हैं ? पेड़ हम सब देखते हैं, अर्थात् आखें यहां काम करती हैं. उसी तरह अन्य इन्द्रिय सक्रिय हैं– देखना, सुनना, चलना, सूंघना, स्पर्श! यह अलग बात हैं कि आखें, देखती तो हैं, मगर दृष्टि कौन देता हैं ? कान सुनते हैं मगर अर्थ कौन देता हैं ? स्पर्श, कोमल या कठोर हम महसूस करते हैं पर इस संवेदना को हम तक पहुंचाने वाला कौन हैं ? स्वाद हम चखते हैं मगर अच्छे–बुरे का ख्याल रखने वाला हमारे भीतर कौन हैं ? हमारा मस्तिष्क, शिराएं, धमनियां, आत्मचेतना, हमारे प्राण ? बात बहुत गहरी होती जाती है. यह पेड़ है. कौन सा पेड़ ? साल का वृक्ष! इसके पत्ते चौड़े हैं. इसका रंग हरा हैं. वृक्ष घना है.

यह दृश्य है जो हम सब देखते हैं. हम तर्क नहीं करते. हम यहां कोई सवाल नहीं करते– यह क्यों हैं, यह हरा क्यों हैं, घना क्यों हैं. छोटा क्यों नहीं.... !

साहित्य या कला रूप प्रारंभिक सूचनाओं का केंद्र भर नहीं है. पेड़ सभी देखते हैं मगर जिसमें दृष्टि हो, जिसमें 'देखने' का नया अर्थ अथवा 'एंगल' हो वही प्रसंग साहित्य के दायरे में आएगा.

अब यह दृष्टि कहां से आती है. कल्पना! मेधा या और कुछ! मनुष्य की कल्पना शक्ति अपरिमित है. और इसी ने हमारी दुनिया को आबाद किया हैं– इसमें शक नहीं. महान् वैज्ञानिक आंइस्टीन कल्पना को मेधा से हमेशा ऊंचा दर्जा देते हैं. वे कल्पनाशील थे, स्वपनदर्शी थे तभी हकीकत में महान् आविष्कार कर पाए. अब इस पर विचार करना गैर प्रासंगिक होगा कि हमारी कल्पनाएं कहां से उद्भूत होती हैं– उसके प्राण कहां हैं. उसकी शक्ति कर स्त्रोत क्या है. जैसे पेड़ देखने के लिए आंखे एक 'टूल्स' मात्र है, उसी तरह मस्तिष्क स्वप्न देखने का एक 'डिवाइस' मात्र हैं.

फिलहाल, प्रश्न ये है कि कहानी में तकनीक कहां, कैसे प्रयोग किया जाए कि बच्चों के लिए, युवाओं के लिए और परिपक्व पाठकों के लिए पठनीय रचनाएं सृजित हों. बच्चों का मामला बहुत गंभीर है– क्योंकि इन बच्चों में ही कल्पनाशक्ति ज्यादा से ज्यादा उद्भूत करने का माकूल समय होता हैं, उनमें संस्कार और शिक्षा के बीज अभी ही डाले जाने का उपयुक्त समय है. और यह काम जितना बेहतर ढंग से कथाएं कर सकती हैं. दुनिया की कोई पाठशाला या विश्वविद्यालय यह करने में अक्षम हैं.

अब प्रश्न हैं बच्चे क्या पसंद करते हैं – देखना, सुनना या पढ़ना. या इस तरह का पाठ कि सुनने जैसा प्रतीत हो. सवाल का उत्तर लम्बे विमर्श की मांग करता है. यह इसलिए भी कि अपनी भाषा, संस्कृति, या ज्यादा व्यवहारिक रूप से कहें तो आज का बच्चा ही कल हमारे गंभीर विषयों का पाठक होगा, या इस मिट्टी की धरोहर होगा– अतः इस पर विचार करना भी एक कर्तव्य होता है. आधुनिक साहित्य की सैकड़ों पत्रिकाएं / किताबें सात समुंदर पार की क्रांतियों का झण्डा लहराती हैं, मगर इन्हें अपने जमीन के नीचे की खाई नहीं दिखती. उन्हें एक चीज बड़े रचनात्मक रूप से करना आता है– टेसुएं बहाना! पाठक नहीं रहे. आधुनिक साहित्य तो बिरलों के लिए है. आदि...

संभवतः विज्ञान भी इस तथ्य से वाकिफ हो कि बच्चों में कल्पनाशक्ति अपरिमित होती है, जब कि तार्किक शक्ति लगभग शून्य! जैसे–जैसे उम्र बढ़ती है यह मात्रा एक तरफ घटती और दूसरी तरफ बढ़ती जाती हैं, अर्थात् कल्पनाशक्ति क्षीण और उसकी जगह संसार का तर्क और तथ्य स्थान लेते जाते हैं. कल्पनाशील व्यक्ति तार्किक हो जाता है. यह स्वाभाविक है. यही गति हैं. (अपवाद छोड़ दें)

बच्चे गहरे और चटख रंग पसंद करते हैं. उनकी कथा में चरित्र स्पष्ट और गहरे रंग लिए हों, परिवेश का चित्रण रंगों से भरा हो ऐसा हम सभी कह सकते हैं.

वाचिकता द्वारा ऐसी कथा बुनना एक अच्छी सोच हो सकती हैं. मानव इतिहास कहता हैं कि 'सुनने' की प्रक्रिया मानव विकास में हजारों वर्षों से रहे हैं. शब्दों द्वारा चित्रण या फोटोग्राफी एक जटिल रचना–प्रक्रिया होगी, बच्चों के मामले में. और बच्चे ही क्यों– सभी उम्र के लोग कथाओं में वाचिक परंपरा को नापसंद नहीं कर सकते. हमारी तमाम लोककथाएं, क्लासिकल में वाचिकता का ही निर्वाह हुआ है. अमर कथा सुनने की इच्छा सती शिवजी से करती हैं, शिवजी राम की कथा सुनाते हैं, सती वो कथा सुनते–सुनते नींद आ जाती हैं, वहीं काग भुसंडी चोरी से कथा सुन रहा हैं, और कथा वाचक को प्रतीत होता हैं कि सती कथा सुन रही है– क्योंकि काग मुसंडी कथा के साथ हुंकार मारता है. महाभारतकार भी कथा गणेश जी को सुनाते हैं और गणेश जी उन्हें लिपिबद्ध करते है. एक द्वारा सुनाई कथा दूसरे और फिर तीसरे के बीच घूमती हैं और हम तक पहुंचती हैं. हमारी पंरपरा में कथाकार कभी भी पाठकों से सीधा मुखातिब नहीं होता, उसकी कथा तोता कहे या काग या और कोई.

इसमें दो राय नहीं कि हम तक पहुंची कथाओं में वक्त के साथ खूब जोड़–घटाव हुए होंगे, और यह जरूरी भी हैं– और इसी लचीलेपन के कारण आज भी ये विषय लेखकों और पाठकों को आकर्षित करते हैं, क्योंकि इन चरित्रों में अपने समय व परिवेश के सन्दर्भ में चित्रित करने की भरपूर संभावनाएं होती हैं. इस पर जितना काम किया जाए कम है. मेरा निजी ख्याल है कि इस पर हर प्रबुद्ध लेखकों, विचारकों, संपादकों को विचार करना चाहिए और आनेवाली संतति के लिए बहुत कुछ छोड़ देना चाहिए सिवाय यह कोसने को कि बच्चे तो 'डोरेमॉन' और 'चींग–चांग' टीवी में देखते हैं. क्योंकि शब्दों, भाषा की शक्ति क्षीण होने का अर्थ है अपनी संस्कृति का मरना और संस्कृति मृत होने का अर्थ किसी गैर की गुलामी! भारतीय वेश में एक अमेरिकन या अंग्रेज. अंग्रेजी या हिन्दी, मराठी भाषा भाषी हो जाना ही हमारी देशज या विदेशीपन की पहचान नहीं हैं,– बल्कि पहचान हैं हमारी सोच! आज आप जितनी भाषाएं जाने उत्तम है– मगर विचार ? आपके अपनी मिट्टी या परिवेश के बारे में क्या ख्याल हैं ? तो यह कहना सही होगा कि लोककथाओं की वाचिकता प्रधान कहानियां बच्चों और नये

पाठकों के समक्ष पेश की जाएं. वाचिकता, अर्थात् कोई हमें कहानी सुना रहा हैं और हम उसे सुन रहे हैं– भले ही आज किसी घर में दादा–नानी नहीं हैं जो नाती–पोतों को कहानियां सुनाएं, मगर हम लिखित या मुद्रित तरीके से ऐसी कथाएं प्रचुरता में प्रकाशित कर सकते हैं जिनमें वाचिकता हो. यहां कहानी पढ़ते हुए भी पाठक कहानी 'सुन' रहा होता है. इस 'सुनने' की प्रक्रिया में उसकी कल्पनाशक्ति किस तरह काम करती है, जरा गौर करें–

नदी किनारे एक विशाल वृक्ष था.

इस प्रारंभिक वाक्य ने, जिसमें पूरी तरह वाचिकता है– जिज्ञासु बच्चों के मन में कई सवाल खड़े किए–कितना विशाल वृक्ष होगा ? कितना घना ? किस चीज का वृक्ष होगा ? नदी किनारे, यानी नदी कितनी लम्बी या चौड़ी होगी, इत्यादि. पाठक का मन या कहें उसका अतःस्थ कल्पना की सैर तत्काल करेगा, उसने जीवन में अब–तक देखे दृश्यों, पेड़ों, नदियों से साम्य करेगा. अर्थात् कहानी के पहले वाक्य से ही पाठक न सिर्फ तादात्म्य हो जाता है वरन अपनी कल्पनाशक्ति का प्रचुर इस्तेमाल अनजाने ही, मगर करने लगता हैं. यहीं उसका अनुभव, अर्थात् ऐसे देखे दृश्य की दुनिया में वह स्वयं को उपस्थित पाता है. और यह सब इतना द्रुत सम्पन्न होता है कि वह हमारी चेतना को लगभग अज्ञात ही रहता हैं.

यहीं मैं ठहरकर कहना चाहूंगा कि फिल्म, दृश्यात्मक तस्वीरें या ऑडियों–वीडियों सीन हमारी कल्पनाशक्ति को जागृत करने में अक्षम है. वे मनोरंजन का एक आसान और सहज उपलब्ध साधन हमें प्रस्तुत करती हैं, हमारा मनोरंजन करती हैं परन्तु यहां हमारी मेघा, कल्पनाशक्ति उत्प्रेरित नहीं होती क्योंकि यहां ठहरने का अवकाश नहीं मिलता.

इसी बात को लेखक चित्रात्मक शैली में लिखता हैः– पीपल का यह वृक्ष है, बहुत घना और विशाल. इसके पत्ते हवा में झूलते प्रतीत होते हैं. वृक्ष नदी के किनारे स्थित हैं. जहां मवेशी–डूबकी लगाये आराम करते हैं. कुछ मछुआरे बड़ी मछलियों की आस में जाल बैठाए प्रतीक्षारत हैं.

यह दृश्य भी गतिमान है और कथा साहित्य में प्रयुक्त होता है. मगर तकनीक चाहे जो भी हो, वहीं सर्वश्रेष्ठ तरीका होगा जो हमें अधिक से अधिक जागृत करें, हमारी कल्पनाओं को हवा दे. जब लेखक सारे दृश्यों को हू–ब–हू जैसा है वैसा उतार देता है तो पाठकों को सोचने, ठहरने का अवकाश ही कहां रह पाता है. दृश्यों के चित्रण में भी वही तरीका बेहतर है जिसमें हमारी कल्पना की उड़ानें भरपूर हों.

कहने की आवश्यकता नहीं कि चलचित्र द्वारा कही कथाएं हमे कितना निष्क्रिय करती हैं– क्योंकि यहां हमारे भाव तत्काल नायक / नायिका के साथ तादात्म्य होते हैं– मगर कल्पना उत्प्रेरित होने का अवकाश यहां नहीं रहता.

किसी ने क्या खूब कहा है कि अगर आप अपने बच्चे की मेधा प्रखर करना चाहते हैं तो उसे खूब लोक कथाएं पढ़ने को दें.

सिर्फ यही एक वो बात नहीं जिसके कारण लोककथाओं के तत्व कहानियों में अपरिहार्य प्रतीत होते हैं, बल्कि इसलिए भी कि जादुई कहानियां हमें अनिश्चित भविष्य, अज्ञात आनेवाले समय से लड़ने–भिड़ने का हौसला भी देती हैं. धरती का ही प्राणी आनेवाले समय से भयभीत होता है. सचेत रूप से न सही, अचेतन ही सही. इन कहानियों में चरित्र दुर्गम और दुर्लभ समय से सामना करता है और अंततः जीत उसी की होती है. यह जो प्राकृतिक न्याय व्यवस्था है – सत्य की जीत, अच्छाई की बुराई पर जीत वह हम सब के भीतर बीजरूप में मौजूद रहती हैं. यह हौसला, विश्वास आगे जीवन की नैयापार लगाने में बड़ी अहम भूमिका निभाता हैं.

मुझे तो यह कहने में जरा भी झिझक नहीं कि कोई अगर पूछे कि आप क्या हो तो बेझिझक कहना चाहूंगा, ये सारे मिथकीय पात्र! उन सभी का सम्मिलन! हम यहीं पर 'हम' हैं. हमारा अस्तित्व, सांस्कृतिक मनुष्य ही अपनी धरोहर हैं और एक सुसंस्कृत मनुष्य क्या है– परंपराओं/लोककलाओं का समुच्चय!

मुझे आश्चर्य होता है जब लोग सवाल उठाते हैं– क्या साहित्य समाज को प्रेरित कर सकता हैं ?

बस्तर पाति फीचर्स

लघुकथाएं

मेल बराबरी का

आज कितने वर्षों बाद विद्या को देखकर मां फूली नहीं समा रही थी. कितनी भारी साड़ी, कितने कीमती गहने और चमचमाती कार से उतरी अपनी बेटी को देखकर गदगद महसूस करने लगी थी. घर के अंदर कुर्सी को अपने पल्लू से पोंछते हुए मां ने विद्या को बैठने का इशारा करते हुए किचन की ओर दौड़ी. और स्टील के गिलास में पीने को पानी दिया.

रोटी दाल, चावल, सब्जी परोसते हुए कहने लगी ''गरीब की कुटिया में यही है बेटी तुझे तो अपने घर में बहुत कुछ खाने को मिलता होगा.''

यह सुनते ही फफक कर रो पड़ी विद्या. मां का भी मन भर आया.

विद्या ने कहा–''बड़े लोग और बड़े घर कहीं विशिष्ट नहीं होते हैं, यही वो चीजें हैं जिसे सभी खाते हैं. बस वहां कमाने की धुन और बटोरने की होड़ होती है और भूख खत्म ही नहीं होती है. अच्छा होता मेरा ब्याह अपनी बराबरी वाले से किया होता तो मैं ज्यादा सुखी रहती. कम से कम वहां आत्मसम्मान तो होता. छोटे घर में पैदा होने के अहसास से घुटन तो न होती. न ही बात–बात पर अपमानित होना पड़ता.''

अतीत के पन्ने

आज फिर लड़की वालों का जवाब 'न' आया. बचपन से ही दोस्तों के बीच पल कर बड़ा हुआ और कब चोरी, शराब जुए के चक्कर में पड़ गया समझ भी न आया. रोजी–रोटी में फंसे मां–बाप ध्यान ही न दे पाये.

देर तो हो चुकी थी पर उनके प्यार भरे स्पर्श और सही मार्गदर्शन ने धीरे–धीरे ही सही पर सुधार ही दिया.

जब वह नेक बनकर जीवन बसर करने लगा तो मां–बाप ने शादी की बात चलाई. पर कोई भी मां–बाप अपनी लड़की ही नहीं देना चाह रहा था.

उसके अतीत के पन्ने उसका पीछा ही नहीं छोड़ रहे थे और वह था कि समाज की मुख्य धारा में जुड़ने की कोशिश में लगा रहा.

श्रीमती कांता देवांगन
मेंहदीबाग रोड़, वैशाली नगर,
प्लॉट नं.–54, नागपुर महाराष्ट्र
फोन.–07387045465

रचनाकारों से

1–अपनी रचना के प्रत्येक पृष्ठ पर नाम अवश्य लिखें. 2–कागज एवं पोस्टल चार्ज की बचत हेतु अपनी रचनायें कागज के दोनो ओर लिखकर भेजें. 3–अपना परिचय एवं फोटो एक बार भेज दें जिससे उसे सुरक्षित रख लिया जाये, बार–बार फोटो आदि भेजकर परेशान न हों. 4–रचना भेजने का ईमेल सबसे उचित साधन है. 5–मोबाइल नंबर अवश्य दें जिससे रचना संबंधी जानकारी तुरंत संप्रेषित की जा सके.

पाठकों से निवेदन है कि रचना पढ़ते वक्त पत्रिका में प्रकाशन क्रम के आधार पर रचना की अथवा रचनाकार की श्रेष्ठता का आंकलन न करे.

ग़ज़ल

ग़ज़ल–1

मिल के गुलशन को चलो अपने बसाया जाए
प्यार के फूलों से फिर उसको सजाया जाए।
आज घर–घर में शज़र ऐसा लगाया जाए
जिसका हमसाए के आंगन में भी साया जाए।
जो सहारा बने और दिलों को बांटे
ऐसी दीवारें तअस्सुब को गिराया जाए।
साफ गंगा है न जमना है न झेलम दरिया
चल कशमीर के झरनों में नहाया जाए।
लाजवंती का दरिन्दा कोई लूटे न सुहाग
मां की रक्षा करें बहनों को बचाया जाए।
ख़ूने नाहक से हैं आलूदा जो ख़ूनी पंजे
उनका इनसान के दामन पे न साया जाए।
जिस से इंसां की मोहब्बत का संवर जाए चमन
सिलसिला कोई मिल के चलाया जाए।
जो हर इक घर को दे पैग़ामे मुसर्रत वो ख़ुशी
गीत 'परवेज़' वही सबको सुनाया जाए।

ग़ज़ल–1

अहले सितम के रोज़ सवालात कुछ न कुछ
अहले जुनूं के रोज़ ज़वाबात कुछ न कुछ।
सूखा पड़ा तो गांव के चेहरे उतर गए
मजबूरियां बताएंगी बरसात कुछ न कुछ।
कुछ काम तो करें कि रहे नाम बाद मर्ग
दुनिया में छोड़ जाएं निशानात कुछ न कुछ।
है ऐडस् की तरह का हवाला भी इक मर्ज़
होते रहेंगे जग में तिलसमात कुछ न कुछ।
ऐसा नहीं बदल ही न पायेगा आदमी
बदलेंगे दो जहान के हालात कुछ न कुछ।
तारीख़ को मिटाओ कि मुझको जलाओ तुम
बाकी रहेंगे फिर भी निशानात कुछ न कुछ।
फिर आसमान मिलने लगा है ज़मीन से
फिर गुल खिलाएगी यूं मुलाकात कुछ न कुछ।
'परवेज़' इस बदलते ज़माने के साथ–साथ
बदले हैं मैंने अपने ख़्यालात कुछ न कुछ।

ग़ज़ल–1

मैं बेतहाशा दौड़ता जिस राह गया
अंबर हसरतों का फ़िज़ा में बिखर गया।
उस आदमी को चील सा झपटा है मर्ग ने
जो गर्दिशे हयात के तेवर से डर गया।
बातों के जगंलों में भटकते ही रह गये
कोहरा फ़िज़ा से छूट के सांसों में भर गया।
मैंने सलीबे वक्त को बाहों में कस लिया
आई जो पास मौत का चेहरा उतर गया।
अब आसमां के रंग भी देखेंगे बैठकर
मौसम की बरकतों से चमन तो संवर गया।
हैरान हो के कब्र मेरी देखती रही
मिट्टी का जिस्म ख़ाक में जाने किधर गया।
या ज़िन्दगी हसीन थी या आसमां जीमल
इक जाल में फरेब के 'परवेज़' घिर गया।

ग़ज़ल–1

आज आया है यहां कल उसे जाना होगा
फिर खुदा जाने कहां उसका ठिकाना होगा।
लाश कमरे में रखे रोते रहोगे कब तक
तुम को इस बोझ को कंधे पे उठाना होगा।
ज़िन्दगी बैठ के दहलीज़ पे सीती है कफ़न
कारवां के लिए अर्थी को सजाना होगा।
हर तरफ देखते हैरान खड़े हैं राही
क़ाफ़ला जाने किस सम्त रवाना होगा।
गो नुमाइश का है बाज़ार में अपने दस्तूर
हम को बाज़ार की रस्म मिटाना होगा।
ख़्वाब दीवाने का बनकर ही न रह जाए हयात
आदती को हमें इनसान बनाना होगा।
सिर्फ बातों से अंधेरे न छटेंगे 'परवेज़'
लोग कहते हैं तो कुछ कर के दिखाना होगा।

रउफ़ परवेज़
बालाजी वार्ड
जगदलपुर जिला–बस्तर छ.ग.
फोन–09329839250
शिक्षा–बीए एलएलबी
दो ग़ज़ल संग्रह प्रकाशित, देशभर की पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित, आकाशवाणी एवं दूरदर्शन पर काव्यपाठ
सम्मान–अभियाम एवं रोटरी क्लब जगदलपुर से सम्मानित